तृतीय अध्याय

नारी विमर्श के बदलते स्वरूप

औपनिवेशिक और उत्तर औपनिवेशिक नारीसंबन्धी अवधारणाओं का विश्लेषण कर नारी-विमर्श के बदलते आयामों को पहचानना इस अध्याय का ध्येय होगा। सर्वप्रथम औपनिवेशिक नारी-विमर्श और उसकी प्रकृति को निर्धारित किया जाएगा। 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास के आधार पर उपनिवेशवाद ने नारी के जीवन और उसके सौन्दर्यबोध पर कैसा प्रभाव डाला, उस पर दृष्टि डालनी होगी। आगे, उत्तर औपनिवेशिकता द्वारा निर्मित नारी-संबन्धी अवधारणाएँ, नारी-मुक्ति की चेतना, कला-क्षेत्र में नारी की भूमिका आदि प्राचलों पर उपन्यास का विश्लेषण किया जाएगा।

भारत की मनुवादी संस्कृति केअनुसार स्त्री की सुरक्षा का दायित्व पुरुषों पर पडा। सामंतवादी युग में पुरुष के संरक्षण में पडी स्त्री हमेशा अपनी स्वतंत्रता को खोने की स्थिति में पहूँची। सुरक्षा रूपी कवच के वास्ते नारी अपनी स्वतंत्रता से वंचित होकर पराश्रित रहने को मज़बूर होती थी। औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में नारी को दुहरी औपनिवेशिकता झेलनी पडी। समाज में मौजूद रूढिगत पुरुष वर्चस्व की व्यवस्था ने नारी को सिखाया था कि वे पुरुषों की दासी हैं।

नारी मुक्ति आंदोलनों ने नारी वर्ग को पुरुषों के बराबर प्रतिष्ठित करने की कोशिश की है। इन आन्दोलनों के द्वारा नारी उत्कृष्ट दशा केलिए सपने देखने लगी। 'मुझे चाँद चाहिए' नारी विमर्श के विभिन्न आयामों का सशक्त दस्तावेज़ है। इस उपन्यास का अध्ययन यहाँ नारी-विमर्श के प्रमुख दो आयामों - उपनिवेशवादी नारी विमर्श और उत्तर उपनिवेशवादी नारी विमर्श पर किया जाएगा।

3.1. उपनिवेशवादी नारी विमर्श

प्राचीन काल से भारत में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमंते तत्र देवताः' का उद्घोष सुनाई पडता है, लेकिन कृषि-प्रधान समाज में नारी की स्थिति सदैव पुरुष की अपेक्षा निम्नस्तर की हो गई। उसे दोयम दर्जे का व्यक्तित्व ही दिया जाता था। उसे हमेशा घर की चारदीवारी में बंद रखने की प्रथा चलती थी। उस ज़माने की कलाकृतियाँ इसका गवाह है कि सामंतवादी सौन्दर्यचेतना पुरुष प्रधान रही। स्त्री को भोग की वस्तु या केवल 'शरीर' मानना पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता है। सामाजिक जीवन में स्त्री की भूमिका पूर्वनिर्धारित है, जिसके मुताबिक पुरुष स्वामी और स्त्री सिर्फ सेविका रह जाती है। महादेवी वर्मा का कथन है - "स्त्री न घर का अलंकार मात्र बनकर जीवित रहना चाहती है, न देवता की मूर्ति बनकर, प्राण प्रतिष्ठा चाहती है।"[१] नारी के पुरुष से निर्धारित व्यवहार संहिताओं के अनुरूप अपना दायित्व निबाहने की हैसियत से मुक्ति पाने का संकेत यहाँ द्रष्टव्य है।

इस संदर्भ में नारी अपने ऊपर लगाये गए राजनीतिक प्रभुत्व को ही नहीं; पुरुष वर्ग द्वारा लगाई गई सांस्कृतिक दासता को भी तोडना चाहती है। बिल

आशक्रोप्ट जैसे आलोचक का समर्थन है, "पूर्व उपनिवेशित देशों की नारी, साम्राज्यवाद एवं पितृसत्तात्मक विचारधाराओं से दो तरफ से औपनिवेशित माने जाते हैं।"[२]

सुरेन्द्र वर्मा ने 'मुझे चाँद चाहिए' में केन्द्रपात्र 'वर्षा' के ज़रिए उपनिवेशवादी अपसंस्कृतियों को तोडने के लिए तडपती नारी को चित्रित किया है। उपन्यास में नारी के अस्तित्व एवं अस्मिता की पुनर्व्याख्या हुई है। वर्षा एवं अन्य नारीपात्र अपनी अस्मिता की चुनौतियों का सामना करती हैं। आलोचक विजय बहादूर सिंह ने 'मुझे चाँद चाहिए' में अभिव्यक्त नारी चेतना पर यह टिप्पणी दी है। "यह उपन्यास उन स्त्रियों का है, जो पुरुष वर्चस्वी व्यवस्था के प्रति सिरे से असहमत है और लड-झगड या मर-कुट कर उस स्वत्व को पा लेना चाहती है, जो सदियों से लावे की तरह उनके भीतर धधक रहा है। यह उपन्यास उस 'लावे' के बाहर आने की एक कहानी है।"[३]

पुरुष अपने मनोरंजन और खुशी के वास्ते नारी की आज़ादी और जिजीविषा पर हमला करता है। वर्षा के ट्यूशन लेने के प्रसंग को लेकर पिताजी की प्रतिक्रिया है। " 'लोग क्या कहेंगे?' यह एक असमर्थ पिता की कातर पुकार थी, जो थोड़ा लुंज-पुंज होने के बावजूद बेटी के सामने खड़ा होने की कोशिश कर रहा था। ... थोड़ी चुप्पी के बाद पिता गहरी साँस लेकर बोले, 'फिर भी यह अकरणीय है'।"[४] पितृसत्तात्मक भारतीय सामंती सभ्यता, 'इज्जत' के नाम पर स्त्री के जीवन की सहज गति पर अवरोध डाल देती है।

उपन्यास में संस्कृत अध्यापक की बेटी वर्षा कालेज के संस्थापक दिवस के कार्यक्रम में नौटंकी में भाग लेती है तो पिताजी उसे कुल या परिवार की बेकब्र के मुद्दों को लेकर रोकते हैं - " 'तू नौटंकी में काम कर रही है?'... कान खोल कर सुन ले, हर बात की हद होती है। आखिर हमारे घर की भी कोई इज्जत है!"[५]

नारी को सिर्फ गृहस्थी में बांधकर उसे अपनी कामनाओं से वंचित रखने और उसे दोयम दर्जे के मानने की पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर आलोचक विजयकुमार अग्रवाल की टिपणी है "सामंत वर्ग की स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियों के कारण नारी हमेशा पुरुष वर्ग के शोषण का शिकार रही। पुरुष वर्ग की कामुक प्रवृत्ति में उसके जीवनक्षेत्र को सीमित कर दिया।"[६]

वर्षा नौटंकी में भाग लेना ही नहीं, लडकों की तरह नाचना और खाना उनके दिल को कचोटने की बात रही। उनके अनुसार लडकी की लाज मिट्टी का सकोरा होती है। सिर्फ छोटी बातों से हतप्रभ होने लायक। इस पहचान से वे क्रुद्ध हो गए और उनका कथन है- "मुझे सिर्फ अपने घर से मतलब है। तेरे साथ लडके भी काम कर रहे हैं। एक के साथ तू नाचती और गाना गाती है। कल के दिन कुछ ऊँच-नीच हो गया तो हमें मुँह छिपाने को जगह नहीं मिलेगी।"[७] यहाँ पुरुषप्रधान सामाजिक व्यवस्था का समर्थक पिताजी चाहते हैं कि अपनी बेटी परिवार की इज्ज़त कायम रखे। उनके अनुसार नाटक में लडकों के साथ वह भागीदारी होना अचिन्त्य ही नहीं अमान्य बात थी।

पुरुष हमेशा स्त्री को अपने कब्जे में रखना चाहता था, साथ ही स्त्री की

क्षमताओं को दबाकर रखने में वह अपनी इज्ज़त एवं मान्यता प्रतिष्ठित मानता था। आलोचक रवीन्द्रकुमार पाठक का कहना है - "स्त्री के अनपढ होने के पीछे का मूल कारण बाह्मणवाद वा पुरुष वर्चस्व की संस्कृति लगती है।"[८] पुरुष प्रधान समाज में स्त्री की सीमारेखा पुरुष से ही खींची जाती है। इसके विरुद्ध जो वातावरण उपस्थित होता उसे समाज तिरस्कार करता है। वर्षा की पहली मंच-प्रस्तुति को लेकर यह तिरस्कार का प्रसंग मौजूद होता है। प्राध्यापिका मिस दिव्या ने वर्षा के परिवारवालों को नाटक देखने के लिए विशेष रूप से आमंत्रित किया था। पर अपनी बेटी के इस कार्यक्रम देखने में परिवार के किसी भी सदस्य ने विशेष रुचि नहीं दिखाई, क्योंकि यह उनके लिए अपमान की बात थी। अतः मिस दिव्या के विशेष आमंत्रण को उन्होंने खारिज कर दिया।

नारी की सौदंर्यचेतना सामाजिक प्रतिमानों से मेल न खाती तो सामाजिक व्यवस्था उसे तोडने की कोशिश करती है। 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' की मंच-प्रस्तुति के बाद 'नारी सिंगार निकेतन' के बजाज जी ने अपनी दूकान के पोस्टर में वर्षा की तस्वीर छपने के लिए वर्षा से अनुरोध किया। इसमें वर्षा और मिस दिव्या को कोई एतराज नहीं था पर पिताजी के लिए बेटी का चित्र प्रदर्शित होना उपहास की बात थी। अतः पिताजी ने आरोप किया कि उसके पोस्टर की चर्चा पूरे शहर में हो रही है, जो उनके लिए असहनीय बात थी।

नारी को हमेशा लचीली मनोवृत्ति के ठहरकर, सामाजिक जिम्मेदारियों से उसे अलग रखने की प्रवृत्ति उपन्यास में मौजूद हैं। उसको पारिवारिक बंधनों के

बीच जकड दिलाने की पुरुषसत्तात्मक समाज की मनोवृत्ति रही है। अपने जीवन को आकार देने को ही नहीं, सपनों को देखने का भी अधिकार स्त्री को नहीं दिया जाता है। अपनी बहिन की शादी के तुरंत बाद वर्षा की भी शादी की चर्चा घर में होती है। वर्षा बी.ए करके कुछ नौकरीपेशा बनना चाहती है पर परिवारवालें इसके कट्टर विरोधी थे। पिताजी पहले धर्म-ग्रन्थों का उद्धरण करके उसे समझाने का प्रयास करते हैं - "जीवन में आयु के अनुसार मनुष्य का धर्म निश्चित किया गया है। वेद-पुराणों ने गृहस्थ आश्रम का प्रतिपादन क्या ऐसे ही कर दिया? संसार-चक्र को चलाने के लिए सबको अपना दायित्व निभाना ही होता है।"[९] धर्मग्रन्थों का आख्यान अपने हितानुसार करते पुरुष वर्ग का प्रभुत्व यहाँ प्रकट होता है।

सामंतवादी समाज नारी को हमेशा पुरुष की कठपुतली के दर्जे में देखना चाहता है। वर्षा के स्कूल में जो नाटक प्रस्तुति हुई उसको लेकर हफ्ते भर चहलपहल रही। इसके बाद जब वर्षा महादेव भाई से मिलती है तो उसका सवाल है, - " 'यह नाटक का भूत तुम्हारे सिर पर कैसे सवार हो गया?' भाई ने सामान्य स्वर में पूछा।... 'पर शहर में दस तरह की बातें होती हैं।' "[१०] नारी जितना भी समर्थ हो उसे हमेशा समाज द्वारा रची हुई लीक पर ही चलना होगा।

वर्षा छुट्टियों के दिन लखनऊ जाने का प्रबंद्ध अपनी ओर से करती है। इस पर परिवार में हुए तनावभरा वातावरण और पिताजी की प्रतिक्रिया पुरुषवर्चस्व का एक भिन्न पहलू प्रस्तुत करता है। "शर्माजी ने वर्षा को एकटक देखा, इस लड़की की उच्छृंखलता की कोई सीमा भी है? ... पिता क्रोध से काँपने लगे, सिलबिल,

मेरा हाथ उठ जायेगा... दूर हो जा मेरी आँखों से..."[११] परिवार के सीमित दायरे से किसी भी कारणवश लड़की का बाहर जाने तक, उनके लिए अमान्य एवं अचिन्त्य बात थी।

'मुझे चाँद चाहिए' का 'हर्ष' पुरुष-प्रधान व्यवस्था का सशक्त समर्थक है। एन.एस.डी. में चतुर्भुज से निर्देशित 'अपने-अपने नर्क' के परिप्रेक्ष्य में नायक-नायिका के तौर पर हर्ष से वर्षा परिचित हुई। वर्षा के उसके साथ भावात्मक संबल स्थापित हो चुका पर, जब कभी अवसर मिलता हर्ष, वर्षा पर कब्जा डालने की कोशिश करता है। हर्ष मानता है कि वर्षा पर उसका पूरा अधिकार है, चाहे वह पत्नी हो, प्रेयसी हो या बेटी हो। ब्रेश्ट के नाटक की प्रस्तुति के सिलसिले में हर्ष के मन का पुरुष वर्चस्व प्रकट हो जाता है। ब्रेश्ट के नाटक पर वर्षा अपनी राय बताने पर हर्ष की प्रतिक्रिया है, " 'तुम जिस शब्दावली का व्यवहार कर रही हो, वह बूर्ज्वा, ह्रासोन्मुख और उपभोक्तावादी संस्कृति की देन है'।"[१२] पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार मनचाहे मार्गों पर चल सकता है पर स्त्री उसे रोक नहीं सकती। चुनाव लडने का निर्णय हर्ष ने लिया तो वर्षा उसे चुनाव से अलग बैठने की सलाह देती है। हर्ष की राय में यों सलाह देने के लिए स्त्री का कोई हक नहीं। "हर्ष तिलमिला गया, तुम सूर्यभान की हिमायत क्यों कर रही हो?... यथास्थिति के तुम्हारे जैसे पैरवीकारों की वजह से ही आज देश की यह हालत है।"[१३] मित्रत्व के प्रारंभिक दौर के बाद हर्ष हर क्षेत्र में अपनी जिद्द स्थापित करने का प्रयास करता था। उसके पुरुष प्रमुख नज़रिया तमाम बौद्धिक परिप्रेक्ष्य में प्रबल था।

उपन्यास में प्रस्तुत कलाकृतियों के कथानक में भी नारी शोषण का भिन्न आयाम मुखरित होते हैं। 'अपने-अपने नर्क' में नारी की सुरक्षा सदैव एक समस्या बनी रहती है, नारी को व्यक्ति के रूप में स्वीकारने में पुरुष हिचकता है। वह चाहता है कि नारी उसके लिए दासी रहे। व्यवस्था की हमला नारी पर ऐसी होती है - "लेकिन यह निश्चित स्थान पर नहीं पहूँच पाती, अपने दूतावास के सुरक्षाधिकारी उसका अपहरण कर लेते हैं, और अचेत करके प्राग वापस ले आने में सफल हो जाते हैं।"[१४]

उपन्यास के अंत में वर्षा के फ्लैट में पहूँचे पिताजी वहाँ के रीति-रिवाज एवं वी.अई.पी. जीवन शैली से खूब विचलित थे। घर में कुत्ते की उपस्थिति, खान-पान में मांसाहार एवं नशीले पदार्थों का उपयोग, वर्षा का बेसमय आना, 'फोन कोल', पुरुष वर्ग से संबन्ध आदि पिताजी के लिए उनकी सीमा से परे की बात थी। एक दिन टी.वी पट पर वर्षा की रपट देखकर वे विक्षुब्ध हो गए और यों कहा - " 'अगर तुमने बुलंदशहर वाला विवाह कर लिया होता, तो आज तुम्हारा भरा-पूरा घर होता'।"[१५] महिला विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित परिसंवाद में वर्षा से अभिव्यक्त नारी का जीवन-दर्शन उन्हें कचोटने लायक था। वर्षा ने नारी का आर्थिक स्वावलंबन पर ज़ोर दिया था। यह उन दोनों के बीच नाटकीय समक्षता का कारण बना। दरअसल उपन्यास के अंत तक पिताजी सामंतवादी युग के प्रतिरूप बनकर ही ठहरते हैं।

औद्योगिक समाज ने स्त्री की छवि को बदल दिया है, खास तौर पर स्त्री-सौंदर्य के तत्वों को निर्धारित करने में। यहाँ सौंदर्य की कृत्रिम दुनिया भी पुरुष के

हाथों में रही। प्रसाधन-उद्योग के पीछे मर्दवादी दृष्टिकोण सक्रिय है। मनोरंजन, प्रसाधन, सेवा, मीडिया आदि संपूर्ण अर्थ व्यवस्था पुरुष के नियंत्रण में है। आलोचक सूर्यबाला का मत है - "पिछले दशकों के स्त्री-विमर्शी रंगमंच (लेखन) की अभिनेत्री बेशक रचनाकर्मी स्त्री रही लेकिन निर्देशन पर पुरुष वर्चस्व का ही बोलबाला रहा।"[१६] स्त्री छवि मूलतः मर्दों की दुनिया द्वारा लगातार गढी गई और बरती गई है और यह धंधा सदियों से जारी है। इन क्षेत्रों में पुरुषों का एकाधिकार होना ही नारी की कमज़ोरी है, नर कार्यरत होने पर नारी की अवांछित आयामों में हस्तक्षेप होता है। औपनिवेशिकता के अगले चरण में यह ज्यादा प्रबल है कि नई तकनीकों, तरीकों का इस्तेमाल करनेवाला पुरुष ही है। इस उद्योग में स्त्री छवि का सृजन करनेवाले डायरक्टर, कैमरामान, एडिटर, पटकथा-लेखक, वितरक सब पुरुष ही हैं।

आजकल मनोरंजन का बडा क्षेत्र फिल्म-उद्योग माना जाता है, जिसमें ऐसी स्त्री निर्मित है जो पुरुष आधिपत्य से बाहर नहीं जाती। आलोचक क्षमा शर्मा के शब्दों में "जिनके हाथ में वित्त और तकनीक थी उन्होंने वैसे ही औरत बनाई जो सहने के चक्कर में मर्दों के इर्द-गिर्द घूमती थी।"[१७] इसका नतीजा यह होता है कि फिल्म की दर्शक संख्या में वृद्धि होती है। साथ ही दर्शक में ऐसी मनोवृत्ति ठूँस लेती है जिससे पुरुष का आधिपत्य कायम रहे।

सिद्धार्थ स्याल की कला फिल्म 'जलती ज़मीन' में रेगिस्तान में प्रताडित नारी के माध्यम से पुरुष वर्चस्व का चित्रण मिलता है। "वर्षा चूल्हे के पास बैठी थी। छोटी-सी कांचली। खुली पीठ पर कसते। मैला लहंगा।"[१८] शूटिंग के बीच

मेकअपमैन नायिका के चेहरे पर पफ लगाकर चिकनाई हटाने का प्रयास करता है। यूनिट के सारे कर्मचारी पुरुष हैं, अपवाद है सिर्फ सह- निर्देशक मीरा पट्वर्धन। " 'मैडम'... मेकअपमैन उसके चेहरे पर पफ लगाने को झुक रहा था।... सामने सिद्धार्थ कैनवास की कुर्सी पर बैठा था। गोद में खुली स्क्रिप्ट। बग़ल में खड़ी प्रमुख सहायक निर्देशक मीरा पटवर्धन उन्हें कुछ बता रही थी।"[१९] सहनिर्देशक की सहायता से निर्देशक कैमरे में वर्षा की चाल की गति निर्धारित करता, ताकि उसका सही प्रभाव दर्शक पर पडे।

'जलती ज़मीन' के ज़रिए अभिव्यक्त कथानक मर्दवादी दृष्टिकोण का नमूना है। मुसाफिरों के लिए रैन-बसेरा चलाती नायिका दाखाँ, आत्मशक्ति एवं जिजीविषा से भरपूर नारी है, जो रोज़गारी श्रम और संघर्ष से निभाती है। कहानी के अंत में वह अपने प्रेमी से वंचित होती है। "अपने को संभालकर दाखाँ उठ खडी होती है - - बच्चे को कंधे पर लिए और बालू के दूहोंवाला निर्जन झुलसता रास्ता पार करने लगती है। पृष्ठभूमि में जीवन की जिजीविषा को रेखांकित करनेवाला गीत चलता है...।"[२०]

पृष्ठभूमि में सुनाई पडनेवाले संगीत के साथ नायिका की पीडा भी चरमसीमा पर पहूँचती है जिससे दर्शक खुश हो जाते हैं। पुरुषों के शोषण को सहनेवाली स्त्री टिकट खिडकी पर सफलता प्राप्त करती है। "...दाखाँ ने निगाह उठाकर पति को देखा, फिर थाली की रोटी को। गहरी साँस ली।... एक क्षण... दाखाँ के होंठ हिलने ही वाले थे कि वर्षा ने कहा, 'नहीं, मैंने खा लिया है'।"[२१]

'जलती ज़मीन' में दाखाँ ऐसी एक पृष्ठिका निभाती है जो परिवार के संतुलन के लिए सब कुछ सह लेती है।

3.2. उत्तर उपनिवेशिवादी नारी विमर्श

उपनिवेशवाद के क्षीण होने के साथ तीसरी दुनिया के राष्ट्रों की स्त्रियों पर पडे हुए पुरुष वर्चस्व भी कमज़ोर होने लगा। शिक्षण, नौकरी, संस्थाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ आदि ने नारी-चेतना को एक हद तक झकझोरा। बाहर की दुनिया के साथ स्त्री का सरोकार होने लगा। नारी अपने अस्तित्व की तलाश करने लगी। गैर-उपनिवेश की वजह से नारी अपनी अस्मिता को पहचानने में सफल होती है। आलोचक शोभा देशपांडे का कथन है, "नारी जीवन के स्वतंत्र अस्तित्व और मनोनुकूल जीवन की राह अख्तियार करने की विचारणा हमारे समसामयिक युगबोध से उपजी है।"[२२] सूचना-प्रौद्योगिकी और बाज़ार-तंत्रों ने जिस वृद्धपूँजीवादी सभ्यता को जन्म दिया उसने नारि-मुक्ति को स्फूर्ति दी। अतः उत्तर औपनिवेशिक नारी-विमर्श को गैर-उपनिवेशवाद एवं वृद्धपूंजीवाद के परिप्रेक्ष्य में आंकना है।

3.2.1. गैर-उपनिवेशवाद

पुरुष द्वारा निर्धारित लीकों पर चलने को उत्तर औपनिवेशिक नारी तैयार नहीं होती। पुरुष वर्ग द्वारा बनाई हुई संहिताओं के बीच नारी अपनी राह और अस्मिता खोजती है। नारी देह को विवेचित करने का 'नायिका-भेद' ही नहीं, उसके सामाजिक-राजनीतिक दर्जे को नापने का मापदण्ड भी पुरुष ही बनाता था। पर गैर

उपनिवेशिक नारी इन मापदण्डों को तोडकर अपनी अस्मिता और सामाजिक भूमिका को नापने का पैमाना खुद ही निर्धारित करती है।

वर्षा के नाम बदलते प्रसंग से उसकी अस्मिता की खोज का उपक्रम होता। हाईस्कूल भरती के समय वर्षा ने अपना नाम खुद 'यशोदा शर्मा' से 'वर्षा वशिष्ठ' में बदल दिया था। पिता के पूछने पर वर्षा कहती है - "यशोदा शर्मा नाम में कोई सुंदरता नहीं!... वशिष्ठ हमारा गोत्र है। उससे यह तो मालुम हो जाता है कि यह ब्राह्मण है वैसे भी एक महान् मुनि का नाम है।... मैं ने तुम्हारी अलमारी से ऋतुसंहार लेकर पढी थी। छहों ऋतुओं में मुझे सबसे अच्छी वर्षा लगी।"[२३]

आलोचक विजय बहादूर सिंह का कहना है - "यशोदा शर्मा का नाम बदलकर वर्षा वसिष्ठ हो जाना सिर्फ नाम बदलना ही नहीं है, एक चले आते, जैविक जीवन प्रवाह का एक सांस्कृतिक जीवन प्रवाह में रूपांतरण होने का संघर्षपूर्ण इतिहास भी है।"[२४] नायिका वर्षा का अपना नाम यशोदा शर्मा से वर्षा वशिष्ठ रखने से उस चरित्र की प्रगति शुरु होती जो परंपरा के खिलाफ हो।

नारी विमर्श की प्रमुख लेखिका प्रभा खेतान ने लिखा है "नारी न केवल अपने हक केलिए सत्ता से सवाल करती है, बल्कि औरों के लिए भी वह रूढिवादी परंपरा और वैचारिक दुराग्रहों को खंगालती है, खुरचती है। वह समझ चुकी है कि जिसे वह अपना यथार्थ समझती रही वह महज एक पितृसत्तात्मक सामाजिक निर्मिति है।"[२५]

उपन्यास में प्राध्यापिका के तौर पर सक्रिय 'मिस दिव्या' वर्षा की महत्वाकांक्षा के अनुरूप उसे आगे बढने का मौका देती है। दिव्या प्रशिक्षित नारी है और वह जानती है किस तरह प्रशिक्षण का अनुप्रयोग पुरुष वर्चस्व को तोडने में हो सकता है। जब वह पहचानती है वर्षा की सौन्दर्य-चेतना पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था से दबी हुई है तो वह वर्षा के पिता से कहती है - "मैं आपके सामने अपना दृष्टिकोण रख सकूँ। हम नाटक को एक सांस्कृतिक तथा सौंदर्यबोधीय कार्यकलाप के रूप में लेते हैं।.... दूसरी ओर इस कला-माध्यम के .... जिससे वर्षा की सामाजिक बदनामी का डर हो।[२६] यहाँ उस शिक्षित नारी की रणनीति दिखाई पडती जो पुरुष वर्चस्व के खिलाफ लडने में कामयाब हुई है।

वर्षा उस स्वावलंबी और कठिन परिश्रमशाली आधुनिक भारतीय नारी का प्रतिनिधि है जो इस दुहरी औपनिवेशिकता के पुरुषवर्चस्व से समझदार ही नहीं उससे विद्रोह भी करती है। अपने प्रयत्न से वह एन.एस.डी. के डायरक्टर डॉ. अटल के समकक्षी बनकर यह सिद्ध करती है कि चाहे व्यक्तिगत जीवन में हो या कला के क्षेत्र में स्त्री, पुरुष की अपेक्षा निम्न स्तर की नहीं होती। वह डॉ. अटल से सौंपे गए सारे दायित्वों को पूर्ण निष्ठा के साथ सफलतापूर्वक समाप्त करती थी। " 'वर्षा, कल शाम तुम मुझे पच्चीस प्रतिनिधि उर्दू कविताओं की सूची दे रही हो। दो दिन बाद इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में चार और साथियों के साथ तुम्हें उनका पाठ करना है।' डॉक्टर अटल ने कहा। इस बार वर्षा बोली, 'यस सर'!"[२७]

काम की सफलता पर डॉ. अटल की तारीफ इसका द्योतक है - " 'ठीक

है।' डॉ. अटल ने सूची पढ़कर कहा। फिर पल भर उसे देखकर बोले, 'काम करने की आदर्श स्थितियाँ ज़िंदगी में कम मिलती है'।" [२८]

स्त्री के श्रम को गौण नज़रिए से देखने और उसे कम वेतन देने की व्यवस्था पर वर्षा यहाँ प्रश्नचिह्न लगाती है। आलोचक प्रभा खेतान के शब्दों में - "मेरे अनुसार उत्तर औपनिवेशिक स्त्री का विकास भूमंडलीकृत आदर्शों के अलावा स्थानीय आदर्शों की मध्यस्थता से और अधिक तीव्र हुआ है। यह स्थानीय आदर्श अपने आप में अतीत के राजनीतिक और सामाजिक बदलाव का ही परिणाम है।"[२९]

वर्षा हमेशा नई कलाप्रविधियों एवं तकनीकों से परिचित होने का कारगर काम करती है। "प्रगति मैदान की नयी नुमाइश में दिल्ली मंडप का रिनोवेशन हो रहा है। एक महीने के लिए दो सहायक चाहिए। वर्षा ने रंगों के चुनाव और काम की निगरानी में हाथ बाँटया। उसे पंद्रह सौ रुपये का पारिश्रमिक मिला।"[३०] नारी की भूमिका पुरुष के समान स्तर में प्रतिष्ठित रखने में वर्षा कार्यरत दिखाई पडती है।

अपने को वैचारिक स्तर पर भी गुलाम बनाने वाले पुरुष सत्ता से नारी विद्रोह करती है। नारी पक्षधर प्रभा खेतान की राय है - "पूँजीवाद की ओर अग्रसर होते हुए तीसरी दुनिया के भूमंडलीय आर्थिक प्रणाली वाले देशों में स्त्री की जो पहचान उभरती है, वह पश्चिमी नकल भर नहीं है। आधुनिक विमर्श में हिस्सेदारी कर रही स्त्री को एक सीमा तक अपना आलोचनात्मक रवैया बनाने में सफलता मिली है।"[३१] कला के आंतरिक सत्य के उद्‌घाटन केलिए 'हंसिनी' के संवादों को

सुधारने के उद्देश्य में वर्षा ने जो सुझाव दिया, डॉ. अटल उसको मानने को विवश होता है - "डॉ. अटल की मुस्कान धीरे-धीरे विलुप्त होती गयी और अंत में वे वर्षा समान गंभीर हो गए। 'चलो, अपनी व्याख्या के मुताबिक इस सीन को फिर से लो'।"[३२]

नारी की अभिव्यक्ति की आज़ादी पर कब्जा रखनेवाले पुरुषसत्ता के खिलाफ वर्षा आवाज़ उठाकर अपने अधिकारों को हासिल करती है। 'हंसिनी' की मंच-प्रस्तुति के बाद डॉ. अटल का प्रशंसोद्गार इसका प्रमाण है। "वर्षा को सिर्फ डॉ. अटल की बात याद रही, 'वर्षा, नीना की प्रतिभा मंच पर चीत्कार या मरने के द्वारा ही प्रदर्शित हो पायी थी। इसके उलटे तुमने शुरू से आखिर तक अपने चरित्र-निरूपण की तर्कसंगति, निरंतरता और श्रेष्ठता बनाये रखी। मेरी हार्दिक बधाइयाँ!' "[३३]

उत्तर औपनिवेशिकता ने नारी को पुरुष-वर्चस्व से मुक्त किया साथ ही अपनी रुचि के अनुसार वैयक्तिक ज़िंदगी एवं कलाजगत में बढने का मौका भी अदा किया। नारीमुक्ति आंदोलन का एक अलग आयाम यहाँ मौजूद है, वह पराश्रित रहना नहीं चाहती। स्वावलंबन केलिए वर्षा राहों को खोजती है। चाहे प्रेमी हर्ष हो या फिल्मी क्षेत्र के कोई पूँजीपति हो, आर्थिक स्तर पर उसका आश्रय लेने को वह झिझकती थी। वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने केलिए प्रयत्नशील है। "उन्होंने पुस्तक छापने में रुचि दिखायी थी और वर्षा को एकमुश्त पाँच सौ रुपये देकर कॉपीराइट ले लेने का प्रस्ताव रखा था। दो महीने में हज़ार रुपये अतिरिक्त कमा लेने के विचार से सिलबिल खासी उत्तेजित चल रही थी।"[३४]

नारी-मुक्ति आंदोलन ने कला और जीवन के क्षेत्र में स्त्री को समान अवसर देने में असहमती जतानेवालों पर प्रश्नचिह्न लगाया है। वर्षा अपने को पुरुष के समान दर्जे की साबित कर देती है। डॉ. अमर ज्योति का शब्दांकन है - "महिलाएँ अब किसी भी अर्थ में पुरुषों से दोयम दर्जे की स्थिति में नहीं दिखाई देती। पुरुष के समान आत्मनिर्भर रहना अब उनकी महत्वाकांक्षा है।"[३५] वह एन.एस.डी. परिप्रेक्ष्य में पुरुष के साथ किसी भी काम में कार्यरत होना अपना हक समझती थी। छुट्टी के दिन मन बहलाने के लिए वह भी स्नेह के साथ उद्योगपती खेमका का घर जाकर वहाँ के कार्यक्रमों में भाग लेती है। "वर्षा स्नेह के साथ कई बार यहाँ आ चुकी थी। दो महीने पहले मित्रों के परिवारों के लिए यहाँ एक काव्य-पाठ भी आयोजित हुआ था, जिसमें वर्षा ने भी अपनी कुछ प्रिय कविताएँ सुनायी थी।"[३६]

औद्योगिक क्रांति के सिलसिले में अपनी अस्मिता को पहचानी नारी अपने दायरे की सीमाओं का उल्लंघन करती दीखती है। गैर-उपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में नारी कला एवं व्यक्ति जीवन के विभिन्न आयामों में अपने को पुरुष के समकक्ष प्रतिष्ठित करती है। नारी मुक्ति के अगले चरण का हकदार बननेवाली स्त्री के कई चित्र आगे भी देख सकते हैं।

3.2.2. वृद्धपूँजीवाद और नारी विमर्श

सभ्यता की तीसरी लहर में सूचना-प्रौद्योगिकी के असर से नारी पुरुष के

समान दर्जे की घोषित की गई है। पुरुष द्वारा बनाई गई संरचनाओं को नारी खुद तोडने का प्रयास करती दिखाई देती है। भूमण्डलीकरण और उदारीकरण ने सामाजिक संरचना को बदल दिया। संस्कृति की दीवारों के टूटने पर हाशिए पर पडे हुए वर्गों में नई स्फूर्ति आयी। डॉ. रेणु शाह का मत है - "वैश्वीकरण ने नारी चेतना के क्षितिज को सबसे ज्यादा फैलाया है। विज्ञान, तकनीक, खेल, कार्परेट-जगत आदि कई क्षेत्रों में स्त्रियों ने अपनी मेधा और श्रम द्वारा पहचान बनाई है।"[३७] 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में वर्षा के द्वारा नारी सशक्तीकरण के विभिन्न आयामों का पर्दाफाश हुआ है। नारी के सशक्तीकरण को प्रमुख रूप से दो स्तरों पर आँका जा सकता है - नारी की सामाजिक अस्मिता और कलाक्षेत्र में नारी की अस्मिता में।

3.2.2.1. नारी की सामाजिक अस्मिता

सामाजिक जीवन में पुरुष के समान दर्जे की घोषित कर अपने अधिकारों को हासिल करने की कोशिश स्त्री करती है। उपन्यास में वर्षा ऐसी अधिकार सचेत उत्तर औपनिवेशिक भारतीय नारी की प्रतिनिधि है।

भूमंडलीय माहौल से स्त्री में हुए बदलावों के परिणामस्वरूप एक ओर स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा होती है तो दूसरी ओर उसे कुछ नई चुनौतियों का ही सामना करना पडता है। श्रीमती रेखा कस्तार के अनुसार- "एक और नए भूमंडल के आदर्श और संस्कृति ने स्त्री को एक व्यक्ति और नागरिक के रूप में स्पेस दी है, पहचान दी है तो दूसरी ओर उसकी यौनिकता और श्रम का वस्तुकरण हुआ है।"[३८]

बुद्धिजीवी स्त्रियाँ समाज के मूलाधार में प्रयुक्त अवधारणाओं के प्रति सदैव आलोचनात्मक रुख रखती हैं। सामाजिक आंदोलन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से परिवर्तनशील रहा है। प्रत्येक स्त्री-समाज की अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विशेष परिस्थिति एवं विचारधारा है। व्यक्ति इसके मुताबिक परिवर्तित होता है।

मद्रास से शूटिंग के बाद आयी थकी उनींदी वर्षा के सामने पूर्वनिर्धारण के बिना आई कला-फिल्म निर्देशिका मीरा के प्रति उसके शौक पर सेक्रेटरी पांडे नाराज़ है। वह चाहता है कि अपनी माल्किन कामयाबी के साथ अपनी शर्तें बढाते जाएँ ताकि स्टारडम की माँगे बढ जाएँ। कला फिल्म वालों से यह असंभव्य है, अतः उनके साथ की मित्रता पांडे केलिए अस्वीकार था। यहाँ वर्षा अपनी हैसियत से अपनी इच्छाओं की पक्षधरता करते हुए पांडे की माँगों को खारिज कर देती और अपनी दक्षता प्रकट करती है- "मेन स्ट्रीम सिनेमा के अजायबघर में मैं साइबीरियन क्रेन की तरह छटपटाती हूँ। समान वेवलेंथ होने के कारण यही एक-दो मित्र बन गए है।"[३९] व्यक्ति जीवन की माँगों के सामने कलात्मक दौर की कामनाओं को इनकार करना ही वह समीचीन मानती है।

दूसरे एक संदर्भ में वर्षा से हमदर्दी दिखाए प्रमुख निर्देशक हुसैन के सहायक करीम को निर्देशक की भूमिका मिलने पर अपनी व्यस्तता के बीच में भी उसकी मदद करते हुए दीखती है। उसने उसकी फिल्म में अभिनेत्री ही नहीं बनी वित्तीय कटौती के साथ क्रेडिट की उपेक्षा भी कर दी। "मद्रास में फिल्म ठोस पूंजी के आधार पर बनती थी, यहाँ ज्यादातर व्यक्तिगत संबन्धों के सहारे। उससे

पारिश्रमिक में कटौती और क्रेडिट की उपेक्षा है।"[४०] यहाँ वर्षा की ओर से पूँजी के बजाय सामाजिक बोध की भूमिका उल्लेखनीय है।

वर्षा एक बार संवाददाताओं की ओर से हुए निम्न स्तर के प्रश्नों के खिलाफ पूरी हिम्मत के साथ हमला करने की क्षमता भी दिखाती है। वर्षा के सामने कला से दूर वैयक्तिक सवाल उठायी तो वह आक्रमक ढंग से उसे दूर हटा देती है। "वर्षा ने दरवाजा खोलकर भावहीन स्वर में कहा, 'मैं तीन तक गिनती हूँ। तुम दफा हो जाओ'।"[४१] संवाददाताओं की बेज़रूरत बातों की ओर बढती हस्तक्षेप पर अपना विरोध जताने में वर्षा कभी हिचकती ही नहीं इसके बजाय उसके बेइज्जत करने में भी समर्थ है।

वर्षा अतंर्राष्ट्रीय स्तर की अभिनेत्री ही नहीं, वह कई चमत्कारपूर्ण पुरस्कार भी प्राप्त करती है। संपत्ति और ख्याति उसे परिवारजनों के निकट ले आती हैं। वह एक पूँजिपति के समान कंपनियों के शेयर खरीद लेती। मुक्त बाज़ार एवं आर्थिक उदारीकरण का प्रभाव वर्षा जैसी कलाकार की जिंदगी में भी दिखाई पडता है - "कंपनियों के बडी संख्या में शेयर खरीद रखे थे, रोहन की एक कंपनी में वह पच्चीस प्रतिशत का साझेदार थी, पनवेल के पास पाँच एकड का फार्म खरीदने की कानूनी कार्यवाही चल रही थी।"[४२] यहाँ वर्षा पुरुष के समान दर्जे में गतिशील होकर आगे बढती है, बडी कंपनियों एवं फार्मों का साझेदार एवं लखपति बनती है।

वर्षा पारिवारिक संरचना का उत्तर औपनिवेशिक स्वरूप से समझौता करने में सफल दिखाई पडती है। रूढिगत सामाजिक मान्यताओं को खारिज करते हुए, प्रेमी हर्ष की मृत्यु पर बच्चे की माँ बनने की वर्षा का निर्णय नारी मुक्ति के उत्तर औपनिवेशिक स्वरूप का मिसाल है। "उसे अंदाज़ था, इस जीव की स्वीकृति उसके आगामी जीवन की दिशा और प्रकृति बदल देगी। पेड़ों के झुरमुट के बीच सूखे पत्तों पर चलते हुए उसने मन-ही-मन कहा, मैं इस फैसले का मूल्य चुकाने को तैयार हूँ...।"[४३] कलाक्षेत्र में संभाव्य सारी अडचनों के बारे में जब पांडे बताते है तो भी वर्षा अपने निर्णय पर अटूट रहती है। उसकी चेतावनी पर वह बोलती- "मैं एक बार कह चुकी हूँ, मेरी जाती ज़िंदगी पर टिप्पणी करने का आपको कोई अधिकार नहीं।"[४४] वह समझती थी यह कंटकपथ साबित होगा। हर्ष की कायरता के खिलाफ वह आत्मधैर्य के स्वावलंबित तरीके से जीने का निर्णय लेती है। यह अपनी कलानिष्ठता के बाद वर्षा का सबसे महत्वपूर्ण मानवीय गठबंधन था।

इस दुविधा के बाद दूसरी एक फिल्म रिलीज़ बहुत प्रभावी और सफल रही तो पांडे ने प्रमुदित होकर 'नंबर वन' की घोषणा करते हुए मूल्य बढाने पर बल दिया। विमल और नांरग जैसे फिल्म निर्माताओं का सुझाव मानते हुए वर्षा ने उसकी राय इनकार कर दी। पांडे उसे छोडकर दूसरे नंबर वन पल्लवी अनंगी के पीछे पडा। विधि की विडंबना ऐसी निकली कि वर्षा फिल्म बाज़ार में सफल बनी।

उपन्यास के अंत में आते-आते वर्षा 'सीगल' की नीना की मान्यता अपना लेती है। "... जिस चीज़ का हमारे पेशें में महत्व है, वह यश नही, बल्कि सहने की क्षमता है। अपना दायित्व निबाहो और विश्वास रखो।"[४५]

यहाँ उपन्यासकर स्त्रीचेतना का स्वरूप पारिवारिक-सामाजिक ढाँचे से बाहर लाये हैं। परंपरा की विसंगतियों को पहचाननेवाली नारी उन विसंगतियों की सीमाओं को लांघकर बाहर निकलती है। यहाँ वर्षा परंपरा से हटकर खडी हो जाती है। पुरुष प्रभुत्व की बुनियादी बातों की लीक से नारी को बचाने में वर्षा सक्षम दिखायी पडती है। पुरुषों की अधीनता को अस्वीकार करती हुई, पुरुष से सृजित सत्ता के तमाम पारिवारिक-सामाजिक रुकावटों से मुक्त होने की ऊर्जा वर्षा, अपनी अनव्याही स्थिति में बच्चे को जन्म देकर प्रकट करती है। आज भारतीय नारी अपने अधिकार एवं स्वायत्तता पाने के लिए और तमाम शोषण रवैये से मुक्त होने के लिए संघर्षरत है।

3.2.2.2. कला-क्षेत्र में नारी की अस्मिता

कलाकार के तौर पर कलाक्षेत्र में मशहूर होने के बावजूद भूमंडलीय बाज़ारी-तंत्र नारी को हमेशा अपने कब्जे में रखना चाहता है। नारी 'देह' के नाम पर पूँजी का संचय ही इनकी मंशा है। अपनी अस्मिता की पहचान से पुरुष वर्ग के समकक्ष अपने को प्रतिष्ठित करने की कोशिश नारी करती है। वह कला-माध्यमों के ज़रिए कलाक्षेत्र में इसका प्रतिनिधित्व करती है। नारी वर्ग को अपनी ताकतों से अवगत कराकर स्वावलंबित होने की और पुरुष के समकक्ष अपने को प्रतिष्ठित रखने की प्रेरणा देती है।

कला-क्षेत्र में भिन्न स्तरीय भूमिका निभानेवाली अनुपमा नारी-मुक्ति के लिए तडपती दिखाई देती है। वह पहले शशांक के साथ सोद्देश्य नुक्कड नाटक के

मंचन में सक्रिय थी। धीरे-धीरे रंगमंच के प्रति उसकी धारणा बदलने लगी। वह विशुद्ध कलात्मक रंगमंच से हट कर 'सोद्देश्य रंगमंच' में व्यस्त रही। वह नारी की ताकतों को पहचानती है। अतः वह 'बिगुल' नामक एक संस्था की स्थापना करके नारी को स्वावलंबी बनाने में व्यस्त होती। "अब वह राजधानी की तीन-चार सी संबन्धी संस्थाओं से जुडी हुई थी। एक समाजसेवी ने 'बिगुल' के लिए प्रत्येक इतवार को पेट्रोल सहित अपनी मिनिबस भी अर्पित कर दी थी, जिससे नुक्कड प्रदर्शनों में सुविधा हो जाएँ।"[४६]

एक स्तरीय कलाकार के पद पर वर्षा प्रतिष्ठित है। साथ ही वह लोकप्रिय भी बनती है। वह अपने प्रेमी हर्ष के सामने अपने अधिकार ज़ताने में समर्थ निकलती है। अपने जिद्दी एवं समझौता विहीन व्यक्तित्व के कारण कारगर कलाकार होने पर भी हर्ष असफल बनता है। इस प्रसंग में वर्षा अपनी पृष्ठभूमि बताकर उसे मार्गदर्शन देने का अनथक प्रयास करती है। यह इसका निशान है कि उसने भी नर के समान प्रतिष्ठा पायी है। हर्ष इस पर झनझनाहट के साथ टकराता तो वर्षा अपना नज़रिया व्यक्त करती। यह उत्तर औपनिवेशिक समाज में नारी चेतना में हुए बदलाव का प्रमाण है - "हाँ, मैं लोकप्रिय सिनेमा में बेवकूफ बनी रहूँगी, पर साथ ही लो बजट फिल्में करूँगी। मीरा पटवर्धन का प्रोजेक्ट जलदी ही मैच्योर हो जाएगा।"[४७] कला क्षेत्र में अपनी ध्वजा उठायी वर्षा प्रेमी हर्ष के आरोपों के बीच अपनी कार्यवाहियों का समर्थन करती है।

माँग और पूर्ति का बाजारू नियम इस फिल्म-उद्योग में व्याप्त समूचे तन्त्र

की नियामक नीति है। 'आरति और अंगारे' के परिप्रेक्ष्य में नारी का सकारात्मक दायित्व उजागर होता है। वर्षा नायिका के रूप में शक्तिशाली पुरुष के साथ नारी के कोमल शालीन स्वभाव से अवतरित होकर अपनी इमेज को गौरवमंडित करती थी। 'आरती और अंगारे' में प्रखर नायक विमल के साथ नायिका की पृष्ठभूमि में वह व्यावसायिक स्तर पर प्रतिष्ठित हो रही थी। स्त्री की उपस्थिति से पुरुष की दुनिया रंगीन करने के उसके सहज गुण पर इस फिल्म में वर्षा कारगर भूमिका निभाती है। फिल्म के कथ्य पक्ष में नारी की भूमिका नायक में आस्था दिलाने लायक प्रस्तुत की गई है। "प्रतिशोध की आग में झुलसते हुए वह एक-एक अपराधी का निर्मम वध कर रहा है। नयी स्कूल की संगीत शिक्षिका शांति से उसकी भेंट होती है। सुंदर सरल और स्नेहमयी। वह फिर जीवन के प्रति नायक के मन में आस्था जगाती है।"[४८]

लोकप्रिय अभिनेत्री बनी वर्षा रंगमंच एवं फिल्म सिटि में प्रतिष्ठित व्यक्ति मानी जाती थी। अतः वर्षा अपनी प्रतिष्ठा से अन्य कलाकारों की मदद करके उनकी ज़िदगी में प्रतिष्ठा पाने और उनकी ज़िदगी आलोकित करने की स्थिति में पहूँचती है। "उसने हुसैन से बात करके चतुर्भुज के लिए दो दृश्यों की मारवाडी महाजन की मसखरी भूमिका जुटा दी थी।"[४९] फिल्मी क्षेत्र की गति विधियों पर नारी के नियंत्रण की हालत भी उल्लेखनीय है।

अपनी कलात्मक सौंदर्यचेतना के भिन्न आयामों से परिचित वर्षा अपनी पहचान के अनुसार नये क्षेत्र मीडिया-तंत्र से अपना अनूठा रिश्ता स्थापित करती है।

डॉ. रेणु शाह के अनुसार - "वर्तमान समाज नारी-मन की संवेदना को मुखर करता है। यह वह समय है, जीवन-यथार्थ से स्त्री की नयी पहचान हुई है। यथार्थ अनेक स्तरों पर फैला और विकसित हुआ।"[५०] मीडिया के संवाददाताओं से अपनी राय व्यक्त करते हुए वर्षा एक भिन्न मोड की ओर मुडने की तैयारी करती है। आगे की घटनाओं के साथ उनकी कलात्मक जरूरतों की पहचान द्रष्टव्य है।

ग्लैमर दुनिया की चकाचौंध के बावजूद वर्षा एक हद तक अपने स्त्रीत्व बनाए रखती है। अपनी देह को अनावृत करने की पुरुष वर्ग की लालसाओं के विरोध में वह खडी होती है, "नयनाभिराम रंगों में मुखपृष्ठ और सेंटरस्प्रैड पर महिमामंडित होने के प्रलोभन के बावजूद वह बिकिनी तो दूर, पीठ तथा जाँघें तक उजागर करने को तैयार नहीं थी। ('आय हैव नथिंग टु रिवील एक्सैप्ट माइ टेलेंट')।"[५१] आज भूमंडलीय दौर में स्त्री-चेतना का स्वर तेज़ है। उपनिवेशवादी दासता एवं भूमंडलीकरण से हमारी नैतिकता में जो क्षरण की स्थिति हुई है वह जोर पकडती है। इसी लकीर में पडी वर्षा अपनी इस व्यस्तता भरी ज़िंदगी से छुटकारा पाना चाहती है।

मुख्यधारा फिल्म की घिनौने प्रवृत्तियों से वर्षा ऊब जाती है। अतः वह उनसे दूर रहना चाहती है। इस पर आदित्य अपने तर्क द्वारा उसे समझाने का प्रयास करने लगे तो वर्षा की असमहती यों प्रकट होती - " 'मैं इस दलील को नकारती नही हूँ।' वर्षा ने कहा था, 'मेरी तकलीफ यह है कि इनका रचना-संसार कितना अवास्तविक है और वहाँ दर्शक को कितने निचले भावात्मक स्तर पर संबोधित किया जाता है'।"[५२]

सेक्रेटरी पांडे, वर्षा की पोशाक एवं आभूषण पर अपनी राय प्रकट करके उसकी कैरियर के महत्व बढाने की सलाह देता है। साथ ही फिल्म इंडस्ट्री की उम्मीदें पूरा करने का और कैरियर को ज्यादा महत्व देने का भी संकेत करता है। अपनी जीवन-शैली पर पांडे की घुसपैठ वह इनकार करती है और बताती, "मैं मित्रों के महत्व को कम नहीं कर सकती।"... "पांडेजी, मेरे भी कलात्मक जरूरतें है।"[५३]

पुरुषों द्वारा निर्धारित कला और सौंदर्य के प्रतिमानों को मानने को वर्षा तैयार नहीं होती। स्त्री की यह मज़बूरी रही है कि उसे पुरुषों द्वारा बनाये हुए सौन्दर्यशास्त्र और रीतिशास्त्र के अनुसार अपने जीवन और सौन्दर्यबोध को आकार देना पडता है। उत्तर उपनिवेशवादी माहौल में नारी कला और सौन्दर्य के प्रतिमानों को अपनी रुचि के अनुरूप रचने का प्रयास करती है।

फिल्म इंडस्ट्री के विशेषज्ञों के सामने उनके अनुमान के विपरीत वर्षा की तीन फिल्म सफलता के शिखर पहूँचती तो वर्षा का तर्क था - "न उम्मीदों के पीछे कोई तर्क होता है, न उन्हें पूरी करने के औचित्य के पीछे।... सब किस्मत का खेल है पांडेजी।"[५४] वर्षा लोकप्रिय बन चुकी है, वह जो कुछ करती है, लोग इसके पीछे हैं।

कलाकार के लिए कलात्मक परितृप्ति सामयिक फिल्म, टेली फिल्म, धारावाहिक आदि से उपलब्ध नहीं होती। इसलिए कलाकार रंगमंच अवतरण के

लिए मजबूर हो जाते हैं। यहाँ वर्षा अपनी कलात्मक चुनौती के सामने, चित्रनगरी की 'इकॉलजी' के लिए फिल्म छोडकर रंगमंच करना उचित समझती है। रंगमंच का 'स्टेपिंग स्टोन' के समान प्रयुक्त होने पर यह सवाल उठता है कि ग्लैमर फिल्मों के लिए रंगमंचीय नाट्य विधा का दम तोड देने की वर्तमान स्थिति कितना विनाशकारी है। यह कला के अस्तित्व का सवाल है जिसे पहचान कर वर्षा की ओर से एक रंगमडली की स्थापना भी होती है, जिसका नाम 'कुतुबमीनार यूणिट' रखा था। नारी की कला-चेतना के अनुरूप कला के माहौल को बनाने की जिम्मेदारी वर्षा लेती है।

वर्षा 'सौम्यमुद्रा' के मंचन से लेकर मुख्यधारा फिल्म के केन्द्रपात्र की दौड तक कला-यात्रा में बहुआयामी संघर्ष झेलती थी। इससे उसने अपनी निजी सौदर्यचेतना भी रूपायित की थी। इसी चेतना पर किसी की घुसपैठ वह खारिज करती थी चाहे उसमें जितना भी संघर्ष और अंतर्विरोध हो। हॉलीवुड फिल्म 'पैलेस ऑफ होप' की शूटिंग में वर्षा के सामने ऐसा एक प्रसंग उपस्थित होता। हॉलीवुड निर्देशक जॉन विलसन वर्षा पर अपना वर्चस्व डालने का प्रयास करते हैं। वर्षा उसके प्रभुत्व का खुलकर विरोध करती है- "मैं चरित्र में हलका - सा मिस्टीरियस टच चाहती हूँ।... वैसे भी सुप्रिया हॉस्पिटैलिटी इंडस्ट्री से है और ऐसी मुस्कान उसकी जॉब-डेफिनेशन का हिस्सा है।"[५५] यहाँ वर्षा अपने निजी सौंदर्यबोध को अभिव्यक्त करती है, वह अभिनेत्री की भूमिका में फिल्म-क्षेत्र के भिन्न आयामों का हकदार हो जाती है।

हॉलीवुड फिल्म के अंत में उसकी कलात्मक प्रखरता पर अंतिम सभागार में हॉलीवुड निर्देशक की घोषणा है - "वर्षा वसिष्ठ ऐसी ही समर्पित अभिनेत्री है। फिल्म भ्रांति है, लेकिन वर्षा का कला-कौतूहल उसे बनावटी नहीं रहने देता। अगर वर्षा को पेड का चरित्र निभाना हो, तो वह महीने जंगल में जाकर खडी हो जाएगी। उसकी कल्पनाशीलता से मैं प्रभावित हूँ।"[५६] कला के क्षेत्र में नारी ने पुरुष के समान ही नहीं पुरुष की अपेक्षा ऊँची हैसियत को अपनायी है।

वर्षा कभी भी अपने कलात्मक सौदर्य के बाहर आनेवाली फिल्मों में हिस्सेदार बनना नहीं चाहती थी। वह अपनी शर्त के बाहर पडते फिल्म वालों को खारिज करने में समर्थ थी। मि. सान्याल अपनी कला फिल्म के लिए उसे न्योता देने पर उसने बताया - "मि. सन्याल... माफ कीजिए मैं आपकी फिल्म नहीं कर पाऊंगी।"[५७] इस इनकार का कारण वह बताती कि उसमें तकनीक की प्रमुखता है पर दृश्य की विशिष्ट भावना की अभिव्यक्ति गौण और महज रूपवादी सजावट की प्रमुखता से दर्शक को प्रभावित करने का मोह है। वर्षा यह पसंद नहीं करती थी। कला फिल्म निर्देशक सिद्धार्थ स्याल एवं अन्य फिल्म निर्देशक भी कलात्मक निर्णय के लिए वर्षा पर आश्रित होता था। "(सिद्धार्थ भी अब गहन दृश्यों में वर्षा के कलात्मक निर्णय पर निर्भर करने लगा था।) इसलिए इंस्टिट्यूट के निर्देशक नाट्य विद्यालय के अभिनेताओं के सामने नमन करते थे।"[५८]

निर्माता या निर्देशक की मज़बूरी पर अपने को सौंपने के लिए वर्षा हमेशा तैयार नहीं होती थी। वह अपनी सौंदर्यचेतना संबन्धी शर्तें पुरुष के सामने

व्यक्त करने में कभी हिचकती नहीं। "उन्हें बता दीजिए कि मैं छह बजे तक ही काम कर पाऊँगी। फिर मेरी रिहर्सल है।"[५९]

वर्षा अपनी निजी व्यवहार-संहिताओं के कारण दूसरे व्यक्तियों से मेल खाने में और इससे प्रतिष्ठित होने में काबिल दिखाई पडती है। सूपरस्टार मैनाक के साथ हुई भेंट इसका प्रमाण है। " 'वर्षा, तुम ठीक तो हो न'? सूपरस्टार मैनाक टहलते हुए पास आ गये।.... नीरजा ने बताया था, 'कंचन प्रभा ने फीलर छोड़ा था। मैंने कह दिया, वर्षा हमारे कैंप में हैं और इस भूमिका के लिए उपयुक्त है'।"[६०] यह प्रसंग मुख्यधारा फिल्म में इसका प्रवेश आसान कर देता है।

वर्षा अपने तनावभरे व्यस्त जीवन के बीच में भी मंच के प्रति अपना दायित्व निभाने के ज़रिए रिपर्टरी के लोगों से जुडाव बनाया रखती है। ऐसे एक अवसर पर रिपर्टरी में पहूँचती वर्षा का चीफ सूर्यभान खडे होकर स्वागत करता है। यह इसकी इज्जत का नमूना है। "आपके सामने मेरे पाँव वैसे ही काँप रहे हैं, जैसे किशनलाल के आगे आंलीवियर आ गये हो।"[६१] रिपर्टरी के कई कलाकारों से भेंट होने पर उससे ऐसी प्रतिक्रिया होती है कि वर्षा उनके लिए आदर्श है। वे वर्षा के पदचापों का अनुगमन करते हुए मश्हूर होना चाहते हैं।

उच्चस्तर पर पहूँची नारी की इज्जत करने में वर्तमान भूमंडलीय समाज तैयार है। यहाँ पूँजी और ग्लैमर ही प्रमुख है, लिंगभेद नही। आलोचक निर्मला जैन का समर्थन है - "दृश्य-श्रव्य माध्यमों की दुनिया में जो व्यापक सांस्कृतिक परिवर्तन

घटित हो रहा है उसमें दृष्टि लोकप्रिय संस्कृति के विकास-विस्तार पर है, और माध्यम है सामूहिक संचार-साधक।"[६२]

'पैलेस ऑफ होप' की शूटिंग के वास्ते लंबे समय तक मैन स्ट्रीम फिल्म से अवधी पायी वर्षा वापस आने पर वहाँ मौजूद माहौल इस तथ्य का गवाह है कि वर्षा की प्रतिष्ठा आसमान तक पहूँची है। "वर्षा जब बंबई लौटी, तो बौखला गयी। हर तरफ से तारीखों की हाय-हाय मची थी।... आशा-महल के कारण उसकी फिल्म पिछड रही थी।"[६३] अपने तमाम तनाव ग्रसित करते हुए सभी उपभोक्ताओं (निर्देशक) के सामने वह सुझाव देती। वह अपनी मान्यता एवं तर्कपूर्ण क्षमता से फिल्म-उद्योग की चरमसीमा पर पहूँची है, पर विडंबना यह है कि वह उपभोग की वस्तु बनी है। यही भूमंडलीकरण का परिणाम है। यह आदमी को ही 'वस्तु' बना लेती है। वर्षा की लोकप्रियता ने उसकी गरिमा को घटाने की हैसियत में पहूँचा दी है। यही वृद्धपूँजीवाद की विशेषता है, व्यक्ति की हालत 'वस्तु' के समान हो जाती है।

सूचना-प्रौद्योगिकी नारी को पुरुष के समान दर्जे की घोषित करती है। नारी रूढिगत नारी-विरोधी संहिताओं को लाँघकर बाहर निकलती है। उपन्यास में क्रमिक विकास के साथ प्रकट होता 'चाँद' संपूर्णता का प्रतिनिधित्व करते दिखाई पडता है। नारी अपनी अस्मिता की पहचान में संपूर्णता पाती है और उसकी प्यास भी बुझ जाती है। सिद्धार्थ के शादी-प्रस्ताव के सामने उसके तर्क यों है - " 'कोई इच्छा अधूरि रह जाये, तो ज़िंदगी में आस्था बनी रहती है।' वर्षा ने अपनी प्रिय धारणा प्रकट कर दी।"[६४] सामाजिक एवं कला-क्षेत्र में अपने चाँद के बुझ जाने पर भी वर्षा अपनी ज़िंदगी की लीक निर्धारित करने में सक्षम दीखती है।

कालिदास के नाटकों के माध्यम से उपन्यास यह बता देता है कि सामंतवादी सौंदर्यचेतना किस तरह पुरुष-केंद्रित रही। पुरुष जिस नज़रिए से स्त्री को देखता था, वही सामंतवादी नारीविमर्श का आधार रहा। पुरुष ने अपनी रुचि के अनुसार अपनी ही खुशी के लिए नारी का रूप-सौन्दर्य, व्यवहार, दायित्व, शील आदि संबन्धी संहिताओं को बनाया है। वर्षा की नौटंकी के पूर्वाभ्यास को लेकर पिताजी की प्रतिक्रिया है - 'मुझे सिर्फ अपने घर से मतलब है। तेरे साथ लडके भी काम कर रहे हैं। एक के साथ तू नाचती और गाना गाती है... जगह नहीं मिलेगी।'

दूसरी लहर की वजह से भारत जैसे देशों की नारी को दुहरी उपनिवेशिकता झेलनी पडी। उसे एक ओर रुढिगत पुरुष वर्चस्व को ढोना पडा तो दूसरी ओर पूँजीवादी ताकतों ने भी उसके जीवन पर अवरोध डाल दिया। 'वर्षा निजी आशंकाओं और निजी राक्षसों से आँखें मूँदने की कोशिश के साथ... हर्ष से मुलाकातें बंद कर दी।'

उपन्यास में मशीनीकरण और प्रशिक्षण पर एकाधिकार रखनेवाले पुरुष वर्ग का भी चित्रण हुआ है। 'दिव्या' नारी और कला संबन्धी संहिताओं के निर्माण में पुरुष वर्चस्व का समर्थन करती है, 'मैं ने सिर्फ इतना किया है कि वर्षा के हाथों में एक कुंजी थमा दी... उन्होंने जिस दरवाज़े में कुंजी लगायी वह खुल गया।

दूसरी लहर के क्षीण होने के साथ उपनिवेशित समाजों को गैर-उपनिवेशिकता की प्रक्रिया से गुज़रना पडा और नारी वर्ग को अपनी अस्मिता की पहली पहचान

भी होती है - 'हाईस्कूल का फॉर्म भरते समय सबसे पहले अपनी विरासत को नकारते और आत्मशुद्धि करते हुए उसने अपना नाम बदल लिया - - वर्षा वशिष्ठ !'

उत्तर उपनिवेशवाद ने नारी को पुरुषप्रधान समाज की वर्चस्वशाली संरचना से मुक्त किया साथ ही अपनी रुचि के अनुसार जीवन और कला की लीकों पर आज़ादी के साथ बढने का मौका भी दिया। 'वर्षा' व्यक्तिगत जीवन और कलाक्षेत्र दोनों में 'हर्ष', 'सिद्धार्थ स्याल' जैसे पुरुषों का सामना करती है और उस बिन्दु तक पहूँचती है जो उत्तर औपनिवेशिक कला का केंद्रक हो। 'हाँ, मैं लोकप्रिय सिनेमा में बेवकूफ बनी रहूँगी, पर साथ ही लो बजट फिलमें भी करूँगी।'

बाज़ार की माँग और पूर्ति के अनुसार नारी संपूर्ण कला जगत् की चमक (ग्लैमर) बनती है। साथ ही, बाज़ार और सूचना-तंत्र द्वारा संचालित कला की बागडोर वर्षा के हाथों में आ जाती है - 'वर्षा जब बंबई लौटी, तो बौखला गयी। हर तरफ से तारीखों की हाय-हाय मची थी।... अब वे लोकोशन पर जाना चाहते थे।'

सभ्यता की तीसरी लहर में सूचना-प्रौद्योगिकी के प्रभाव से नारी पुरुष के समान दर्जे की घोषित की गई है। वह रूढिगत नारी-विरोधी संहिताओं को लाँघकर बाहर निकलती है। उपन्यास के क्रमिक विकास के साथ 'चाँद' भी और प्रकट होता रहता है और संपूर्णता को चाहनेवाली नारी की प्यास भी बुझ जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ

१ महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडियाँ (दिल्लीः लोकभारतीय प्रकाशन, २००१) ४३

२ Bill Aschroft *et.al,* Post Colonial Theory - A Reader (New Delhi: Oxford University Press, 2006) 233
"The women in formerly colonized societies were doubly colonized by both imperial and patriarchial ideologies".

३ विजय बहादूर सिंह, उपन्यास समय और संवेदना (नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, २००७) ३३

४ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), २२

५ वही, ३२

६ विजयकुमार अग्रवाल, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में सामंती जीवन, (दिल्लीः विक्रम प्रकाशन, १९९०), २१५

७ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), ३२

८ रवीन्द्रकुमार पाठक, 'नारीवादी अर्थशास्त्र के प्रयोक्ता अमर्त्यासेन', वर्तमानसाहित्य, मार्च २००८, ५९

९ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), ४०

१० वही, ४६

११ वही, ६४

१२ वही, १६५

१३ वही, १६६

१४ वही, १०९

१५ वही, ५३२

१६ सूर्यबाला, "चुनौतियों के घेरे में आज का स्त्री विमर्श", वर्तमान साहित्य, मई २००८, ५७

१७ क्षमा शर्मा, "मनोरंजन उद्योग और महिलाएँ", स्त्रीमुक्ति का सपना, कमलाप्रसाद (सं), (नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, २००९), १२७

१८ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), २९५

१९ वही, २९६

२० वही, २८८

२१ वही, ३२३

२२ डॉ. शोभा देशपाण्डे, आठवें दशक के हिन्दी उपन्यासों में आधुनिकता बोध, (कानपूरः चन्द्रलोक प्रकाशन, २००८), ३६

२३ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), १७
२४ विजय बहादूर सिंह, उपन्यास समय और संवेदना (नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, २००७) ३५
२५ प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, (नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन प्र.लि., २००३), ५३
२६ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), ३४
२७ वही, १२८
२८ वही, १२८
२९ प्रभा खेतान, बाज़ार के बीचः बाज़ार के खिलाफ (नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, २००७) ५६
३० सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), १२८
३१ प्रभा खेतान, बाज़ार के बीचः बाज़ार के खिलाफ (नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, २००७) १०
३२ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), १३६
३३ वही, १३८
३४ वही, १५८
३५ डॉ. अमर ज्योति, "महिला उपव्यासकारों के उपन्यासों में नारिवादी दृष्टि", स्त्री मुक्ति का सपना, कमला प्रसाद (सं), (नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, २००९), ४६
३६ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), २४७
३७ डॉ. रेणु शाह, "वैश्वीकरण और महीला लेखन का बदलता स्वरूप", मधुमति, जनवरी, २००७, ११८
३८ रेखा कस्तार, "स्त्री खडी बाज़ार में", वसुधा, अप्रैल-जून, २००५, २५१
३९ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), ३९३
४० वही, ३९४
४१ वही, ३९७
४२ वही, ५०४
४३ वही, ५५३
४४ वही, ५५४
४५ वही, ५६८
४६ वही, २६०
४७ वही, ३५४
४८ वही, ३६६
४९ वही, ३६८

५० डॉ. रेणु शाह, "वैश्वीकरण और महीला लेखन का बदलता स्वरूप", मधुमति, जनवरी, २००७, ११८

५१ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), ३९६

५२ वही, ४३३

५३ वही, ४१५

५४ वही, ४१६

५५ वही, ४७०

५६ वही, ४७६

५७ वही, ४३८

५८ वही, ४३९

५९ वही, ४४१

६० वही, ४५७

६१ वही, ४८३

६२ डॉ. निर्मला जैन, काव्य चिंतन की पश्चिमी परंपरा (नई दिल्लीः वाणि प्रकाशन, २००३) ८९

६३ सुरेन्द्र वर्मा, 'मुझे चाँद चाहिए' (दिल्लीः राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. लि., ग्यारहवीं सं. २००६), ४८५

६४ वही, ५७०